3. मद्यपान (शराब)

मन और इन्द्रियों को मुग्ध करने वाले द्रव्य को मद्य कहा जाता है।[1] मादक वस्तु का सेवन करना मद्यपान है। इसमें वे सभी द्रव्य आते हैं, जिनके सेवन से नशा होता है। इन द्रव्यों में भांग, गांजा, चरस, बीड़ी तम्बाकू आदि विशेष हैं। परन्तु यहाँ सबसे अनर्थकारी मद्य (शराब) को लिया गया है। मदिरा पीने की क्रिया करना मद्यपान कहलाता है और उसमें ही अत्यधिक आसक्ति का होना व्यसन बन जाता है।[2]

आचार्य मनु ने मदिरा को अन्न का मल कहा है, इसलिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य को शराब नहीं पीनी चाहिए।[3] महर्षि वेदव्यास ने महाभारत में कहा है कि जो मानव मदिरा का सेवन करता है, वह पापी है।[4] मद्य को पाप का मूल बताते हुए आचार्य सोमदेव भी लिखते हैं कि मद्य महामोह को करने वाला है। सब बुराइयों का मूल है और सब पापों में प्रमुख है। इसके पीने से मनुष्य को हित-अहित का ज्ञान नहीं रहता और हित-अहित का ज्ञान न रहने से प्राणी संसाररूपी जंगल में भटकाने वाला कौन-सा पाप नहीं करता।[5] वसुनन्दि श्रावकाचार में बतलाया गया है कि मद्यपान से मनुष्य उन्मत्त होकर अनेक निन्दनीय कार्यों को करता है और इसीलिए इस लोक और परलोक में वह अनन्त दुःखों को भोगता है।[6] सागरधर्मामृत में लिखा है कि यदि मद्य की एक बूंद के जीव फैल जाए तो वे तीनों लोकों को भर सकते हैं। इसके पीने से अनन्त प्राणियों के घात का पाप लगता है, इसलिए आत्मकल्याण की इच्छा से मद्य का परित्याग अवश्य करना चाहिए।[7]

---

1. मद्यं मोहयति मनो।
   पुरुषार्थ०, 62 तथा दे० श्रावका० संग्रह-1/106
2. प्रवृत्तिस्तु क्रिया मात्रमासक्तिर्व्यसनं महत्।
   त्यक्तायां तत्प्रवृत्तौ वै का कथाऽऽसक्तिवर्जने।। लाटी०, 1/127
3. सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते।
   तस्माद् ब्राह्मण राजन्यौ वैश्यश्च न सुरा पिबेत्।। मनु० 11/93
4. महाभा० शान्ति पर्व 165/47-48
5. उपासका०, 256-257
6. मज्जेण णरो अवसो कुणेइ कम्माणि णिंदणिज्जाइं।
   इहलोए परलोए अणुहवइ अणंतय दुक्खं।।
   वसु०श्राव०, 70
7. यदेकबिन्दोः प्रचरन्ति जीवाश्चेतत् त्रिलोकीमपि पूरयन्ति।
   यद्विक्लवाश्चेममसुं च लोक यस्यन्ति तत्कथयमवश्यमस्येत्।।
   सागार० 2/4

दशवैकालिकसूत्र में श्रमण भगवान् महावीर ने मादक पदार्थों जैसे शराब पीने को मना किया है।[1] पुरुषार्थसिद्ध्युपाय[2] में कहा है कि मदिरा रसोत्पन्न अनेक जीवों की योनि कही जाती है, अतः मद्य पीने से हिंसा अवश्य होती है।

बौद्ध जातकों में दशशील का विस्तृत वर्णन है। उसमें बतलाया गया है कि मदिरा को विषैले सर्प के सदृश है। जैसे-विषैले सर्प से लोग दूर भागते हैं, वैसे ही मदिरा से दूर रहना चाहिए।[3]

योगशास्त्र में हेमचन्द्राचार्य के अनुसार-आग की नन्हीं-सी चिंगारी विराट्काय घास के ढेर को नष्ट कर देती है, वैसे ही मदिरापान से विवेक, संयम, ज्ञान, सत्य, शौच, क्षमा सभी सद्गुण नष्ट हो जाते हैं-

विवेकः संयमो ज्ञान, सत्य शौच दया क्षमा।
मद्यात् प्रलीयते सर्व, तृण्या वह्निकणादिव।। योग०, 3/16

इस प्रकार सभी धर्मज्ञों एवं तत्त्व चिन्तकों ने मदिरापान की निन्दा करते हुए इसे त्याज्य बताया है।

4. वेश्यागमन

जो स्त्री केवल धन के लिए पुरुष का सेवन करती है, उसे वेश्या कहते हैं। इन वेश्याओं को दारिका, दासी, वेश्या या नगर नायिका कहा जाता है, उनसे मेल रखना वेश्यागमन है।[4] मनुस्मृति में कहा गया है कि पराई स्त्री से मेल न रखें। दाशवैकालिकसूत्र में तो यहाँ तक कहा गया है कि ब्रह्मचर्य व्रती साधक को वेश्याओं के मोहल्ले के निकट नहीं जाना चाहिए।[5]

---

1. सुरं वा मेरगं वा वि अन्न वा मज्जगं रसं।।
   ससरक्खं न पिवे भिक्कखू, जस सारक्खमप्पणो।।
   दशवै०सू०, 5/2/36
2. पुरुषार्थ, 63
3. जा०, पंचम खण्ड, गाथा 56, पृ० 107
4. पव्यस्त्री तु प्रसिद्धा या वित्तार्थं सेवते नरम्।
   तन्नाम दारिका दासी वेश्या पत्तननायिका।।
   लाटी०, 1/129
5. मनु०, 4/133

अमितगति श्रावकाचार में वेश्यागमन व्यसन का निषेध करते हुए आचार्य अमितगति कहते हैं–जो धूलि उड़ाने वाली आंधी के समान आँखों में राग बढ़ाती है, तो वही अंधकारमयी रात्रि के समान लोक का विध्वंस भी करती है, जो चोर के समान अर्थपरायण होकर दूसरों का धन हर लेती है, जो शरीर का सत्त्व खींचकर प्राणी को नि:सत्त्व बना देती है,[1] जो अग्नि ज्वाला के समान स्पर्श की हुई सर्व प्रकार से सन्ताप उत्पन्न करती है, जो दान देने में कृपण है, चाटुकारी करती है और जो मदिरा के समान सेवन की जाती हुई चित्त को विमोहित करती है, ऐसी वेश्या शील रूप अलंकार को धारण करने वाले पुरुष के द्वारा दूर से ही हेय हैं।[2] वसुनन्दिश्रावकाचार में स्पष्ट भी कहा गया है कि वेश्या सेवन जनित पाप से यह जीव घोर संसार सगार में भयंकर दु:खों को प्राप्त करता है, इसलिए मन, वचन और काया से वेश्यागमन नहीं करना चाहिए।[3]

प्रश्नोत्तरश्रावकाचार में भी आता है कि यह वेश्या मद्य, मांस में सदा आसक्त रहती है, चाण्डाल आदि को भी लम्पट बनाकर रखती है और जो सदा अपकीर्ति देने वाली है। इसलिए हे मित्र! सर्पिणी के समान इस वेश्या को तो तू दूर से ही छोड़ दे।[4]

गौतमकुलक में महर्षि गौतम कहते हैं कि वेश्यागामी पुरुष का कुल ही नष्ट हो जाता है–वेसा पसत्तस्स कुलस्स नासो।।

विपाकसूत्र में वेश्यागमन के इहलौकिक दुष्परिणाम वध एवं बन्धन आदि के रूप में तथा पारलौकिक दुष्परिणाम नरकादि गतियों में प्रचुर दु:ख भोग के रूप में वर्णित किए गए हैं।[5] अतएव मानव को कभी भी वेश्यागामी नहीं होना चाहिए।

5. शिकार (पाराद्धिदोष)

शिकार व्यक्ति का पाचवाँ व्यसन है। इसमें निरपराध प्राणियों–पशु एवं पक्षियों

1. न चरेज्ज वेससामंते बंभचेर वसाणुए।।
   दशवै०सू०, 5/1/9
2. अमित०श्राव०, 12/63-66
3. पावेण तेण दुक्खं पावइ संसार-सायरे घोरे।
   तम्हा परिहरियव्वा वेस्सा मण-वयण काएहिं।।
   वसु०, श्राव०, 93
4. मद्यमांसादिसंसक्ता मातंगादिषु लम्पटाम्।
   सर्पिणीमिव भो मित्र त्यज वेश्यां कुकीर्तिदाम्।।
   प्रश्नो०श्राव०, 12/39

की हिंसा होती है। शिकार मानव की क्रूर प्रवृत्तियों का परिणाम है। इसमें मानव अपनी प्रसन्नता के लिए दूसरों का वध करना चाहता है किन्तु प्रभु महावीर कहते हैं कि जिसे तू मारना चाहता है, वह कोई और नहीं, स्वयं तू है–तुम सि नाम तं चेव, जं हन्तव्व ति मन्नसि।[1]

श्रीमद्भागवत में व्यास ने लिखा है–जो शिकार के शौकीन हैं, पशु घातक हैं, उन प्रेतों के सदृश नर-पिशाचों को यमदूत अपना निशाना बनाकर समाप्त कर देता है।[2]

वसुनन्दीश्रावकाचार में आता है कि–मधु, मद्य, मांस का दीर्घकाल तक सेवन करने वाला जितने महान् पाप का संचय करता है, उतने सभी पापों को शिकारी एक दिन में शिकार खेलकर संचित कर लेता है–

महुमज्जमंससेवी पावइ पावं चिरेण जं घोरं।
तं एयदिणे पुरिसो लहेइ पारद्धिरमणेण।। वसु०श्राव०, 99

जिसका नाम लेना भी भारी पाप का उपार्जन करता है, वह मृगया संसार के दु:खों से डरने वाले पुरुष को मन, वचन, काय से निश्चय ही छोड़ देना चाहिए।

शिकार खेलने वाला मनुष्य भव-भव में अल्पायु का धारी, विकलांगी, रोगी, अन्धा, बहरा, दुष्ट बौना, कोढ़ी व नपुंसक होता है।[3] जो व्यक्ति दूसरों के प्राणों को अपहरण कर कष्ट देते हैं, उन्हें सुख कहाँ प्राप्त हो सकता है? जो अपनी विलासता, स्वार्थ, रसलोलुपता धार्मिक अन्धविश्वास अथवा मनोरंजन के लिए पशु-पक्षियों के रक्त से अपने हाथ रंगते हैं, उन्हें आनन्द कहाँ?[4] शिकार खेलने में भी अनेक जीवों की हिंसा होती है, हिंसा से पाप, दु:ख और दुर्गतियां प्राप्त होती हैं तथा अनेक बार वध, बंधन आदि के दु:ख सहने पड़ते हैं, इसलिए इस शिकार अर्थात् पशु-पक्षियों के वध की प्रवृत्ति को सदा के लिए दूर से त्याग देना कल्याणकर है।[5]

1. विपाक०सू०, 1/2
2. मृगयारसिका नित्यं अरण्ये पशुघातका:।
   परेतांस्तान् यमभटा लक्ष्मीभूतान् नराधमान्।। श्रीमद् भाग०, 8/22/46
3. स्वल्पायुर्विकलो रोगी विचक्षुर्वधिर: खल:।
   वामन: पामन: षण्ढो जायते स भवे-भवे।।
   अमित०श्राव०, 12/98
4. लाटी, 1/141-148
5. जीवहिंसाकारं पापं दु:खदुर्गतिदायिकम्।
   वधबन्धकरं दक्षं आखेटं दूरतस्त्यजेत।। प्रश्नो०श्राव०, 12/42

6. चोरी

इसे अदत्तादान जो वस्तु नहीं दी गयी है (अदत्त) उसका ग्रहण करना (आदान) और स्तये (चुराना) भी कहते हैं। कोई भी वस्तु उसके स्वामी से बिना बताए लेना चोरी है।[1] इस कर्म से लोक में प्रतीति और प्रेम समाप्त हो जाता है, प्रत्येक व्यक्ति के घृणा का पात्र बनना पड़ता है और सभी सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। पराए धन को हरकर मनुष्य इस लोक व परलोक में प्रचुर दु:खों से भरी अनेक यातनाओं को पाता है और कभी भी सुख को नहीं देखता है।[2] अत: जो संसार के दु:खों से भयभीत हैं और आत्मजन्य सुखों की इच्छा करते हैं, ऐसे गृहस्थों के लिए चोरी का व्यसन अवश्य ही त्याग देना चाहिए।[3]

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने कहा–बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण न करो।[4] यहाँ तक कि दांत कुरेदने के लिए एक तिनका भी न लो।[5] कोई भी चीज आज्ञा लेकर ही ग्रहण करनी चाहिए। प्रश्नव्याकरणसूत्र में चोरी के तीस पर्यायवाची नाम बतलाए गए हैं।[6] वैदिक धर्म में भी चोरी करने का स्पष्ट निषेध किया गया है।

वाङ्मय में चोरी के विविध प्रकारों की चर्चा आती है। मालिक की अनुपस्थिति में, उसकी उपस्थिति में भी असावधानी से उसकी वस्तु ग्रहण करना, सेंध लगाकर, जेब काटकर, ताली या गठरी खोलकर अथवा पड़ हुआ, भूला हुआ, खोया हुआ, चुराया हुआ, कहीं पर रखा हुआ दूसरे के धन पर अधिकार करना भी चोरी ही कहलाता है।[7]

1. लाटी०, 1/163
2. परदव्वहरणसीलो इह-परलोए असायबहुलाओ।
   पाउणइ जायणाओ ण कयावि सुहं पलोएइ।।
   वसु०श्राव०, 101
3. तदेतदव्यसनं नूनं निषिद्धं गृहमेधिनाम्।
   संसारदु:खभीरुरुणामशरीर सुखैषिणाम्।।
   लाटी०, 1/165
4. अदिन्नमन्नेसु य णो गहेज्जा।
   सूत्र०सू० 10/2
5. दन्तसोहणमाइस्य अदत्तस विवज्जण।।
   उत्तरा०सू०, 19/28
6. अणुन्नविय गेण्हियव्व। प्रश्न० 1/3/61
7. पतितं विस्मृत नष्टं, स्थितं स्थापितमाहितम्।
   अदत्तं नाददीत स्व परकीयं क्वचित् सुधी।। योग०, 2/66

7. परस्त्री सेवन

इसे काममिथ्याचार और अगम्यागमन भी कहते हैं। परस्त्रीगमन अर्थात् परायी पत्नी व स्त्री संभोग सप्त व्यसनों में अन्तिम व्यसन है। परस्त्रीगमन सामाजिक अपराध है, यह अनाधिकार चेष्य है, राष्ट्र की व्यवस्था का नाशक है। धार्मिकता की दृष्टि से यह दुराचार व व्यभिचार कहलाता है।

परस्त्री से अभिप्राय अपनी धर्मपत्नी के अतिरिक्त अन्य सभी स्त्रियों से है। लाटी संहिता में भी कहा है कि देव, शास्त्र, गुरु को नमस्कार कर तथा अपने भाई-बन्धुओं की साक्षीपूर्वक जिस कन्या के साथ विवाह किया जाता है, वह विवाहिता स्त्री कहलाती है। ऐसे विवाहिता स्त्री के सिवाय अन्य सब पत्नियां दासी कहलाती हैं।[1]

आचार्य मनु कहते हैं कि इस विश्व में पुरुष के आयुष्य बल को क्षीण करने वाला परस्त्री सेवन जैसा अन्य कोई निकृष्य कार्य नहीं है।[2] बाल्मीकि रामायण में बाल्मीकि ऋषि ने भी परस्त्री से अनुचित सम्बन्ध रखने को निन्दित बतलाया है।[3]

अमितगतिश्रावकाचार में बतलाया गया है कि शीलवान् पुरुष को तिर्यंचनी, मनुष्यनी, देवी और निर्जीव काष्ठ पाषाण रूप आकार वाली स्त्री–ये चारों ही प्रकार की परायी स्त्रियों को मन, वचन, काय से कभी भी नहीं भोगना चाहिए।[4] वसुनन्दिश्रावकाचार में भी आता है कि यदि कोई भी पापिनी दुराचारिणी अपने शील को नाश करके कामी पुरुष के पास स्वयं उपस्थित भी हो जाए, अपने आपको सौंप भी देवे, तो भी उस शून्य गृह या खंडित देवकुल के भीतर रमण करता हुआ वह कामी व्यक्ति अपने चित्त में भयभीत होने से वहाँ क्या सुख पा सकता है?[5] नहीं, बल्कि परस्त्रीगमन से मानव सर्वनाश की प्राप्ति कर अधमगति में ही जाता है।

1. देवशास्त्रगुरुन्नत्वा बन्धुवर्गात्ममाक्षिकम्।
   पत्नी पाणिगृहीता स्यात्तदन्या चेटिकामता।।
   लाटी०, 1/178
2. न हि दृशमनायुष्यं लोके किंचित् दृश्यते।
   यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम्।।
   मनु०, 4/134
3. श्रीमद्बाल्मी० सुन्दरकाण्ड 21-4
4. अमित०श्राव०, 77
5. वसु०श्राव०, 119-120

अत: श्रावक बनने से पहले मानव को इन व्यसनों का सर्वप्रथम त्याग कर देना चाहिए। ये सात बुरी आदते हैं, जिससे इह लौकिक व पारलौकिक हानि प्राप्त होती है। अत: व्यसनमुक्ति एक ऐसी विशिष्ट आचार पद्धति है, जिसके परिपालन से गृहस्थ अपना सदाचारमय जीवन व्यतीत कर सकता है और राष्ट्रीय विकास के कार्यों में भी सक्रिय योगदान दे सकता है।

साधु-मुनि हो, या श्रावक उन सबका आचारशास्त्र विस्तृत है कारण कि कुछ नियम जहाँ त्याजनीय होते हैं वहीं अधिकांश ग्राहणीय होते हैं। ग्रहण करने योग्य नियमों का निष्ठापूर्वक परिपाल करने से श्रावक के जीवन में अकल्पनीय गुणों का आर्विभाव हो जाता है। इस सभी को दृष्टि में रखकर अगले अध्याय में श्रावक को जीवन में धारण करने योग्य यम नियमों का जैन दृष्टि से विवेचन करना अपेक्षित समझती हूँ।

तृतीय अध्याय

उपासकदशाङ्गसूत्र में वर्णित उपासकाचार

(क) द्वादश व्रत

1. अणुव्रत
2. गुणव्रत
3. शिक्षाव्रत

(ख) प्रतिमा

(ग) षडावश्यक :

(घ) तप :

1. तप का महत्त्व
2. तप की निरुक्तिपरक व्याख्या
3. तप के भेद-बाह्य तप

(ङ) सल्लेखना